[2014] 1 एस.सी.आर. 64

कानपुर जल संस्थान एवं अन्य

बनाम

मेसर्स बापू कंस्ट्रक्शन

(2014 की सिविल अपील संख्या 26)

जनवरी 03, 2014.

[अनिल आर. दवे और दीपक मिश्रा, जे.जे.]

मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996:

धारा 37 - धारा 34 के तहत आपत्ति को खारिज करने के आदेश के खिलाफ अपील - सिविल प्रक्रिया संहिता की प्रयोज्यता - अभिनिर्धारित: पंचाट में प्रवर्तन की क्षमता है - अतः जब धारा 34 के तहत की गई आपत्ति की अस्वीकृति के खिलाफ अपील दायर की जाती है, तो पंचाट की प्रवर्तनीयता को पूर्ण आधार प्राप्त होता है - जब इसे धारा 37 के तहत अपील में चुनौती दी जाती है, तो सिविल प्रक्रिया संहिता का अंतर्निहित सिद्धांत लागू होता है - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 41, नियम 5 ।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908:

आदेश 27, नियम 8क और आर 8ख सपठित आदेश 41, नियम 5 - 'सरकार' - का तात्पर्य - मध्यस्थता और सुलह अधिनियम की धारा 34 के तहत आपत्ति को खारिज करने के आदेश के खिलाफ जल संस्थान द्वारा अपील - उच्च न्यायालय ने स्थगन के लिए एक आवेदन पर, अपीलकर्ता को संपूर्ण पंचाट राशि जमा करने का निर्देश दिया - दलील है कि ऐसी शर्त को अपीलकर्ता की तरह सरकारी संगठन पर नहीं लगाया जा सकता है - अभिनिर्धारित किया गया: विधायिका ने "सरकार" शब्द को परिभाषित किया है ताकि व्याख्या और अनुमान के लिए कोई जगह न दी जा सके - इसका मतलब या तो केंद्र सरकार या राज्य सरकार और कुछ मामलों में किसी राज्य की सेवा में लोक अधिकारी - विधायिका ने जानबूझकर एक सीमित परिभाषा का उपयोग किया है और इसका दायरा व्याख्यात्मक प्रक्रिया द्वारा राज्य की किसी एजेंसी या साधन को सम्मिलित करने के लिए विस्तारित नहीं किया जा सकता है - यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि अपीलकर्ता जल संस्थान सरकार के विस्तारित शाखा के भीतर आएगा -

हालाँकि, उच्च न्यायालय के आदेश को संशोधित किया गया और अपीलकर्ता को संपूर्ण पंचाट राशि के लिए प्रतिभूति प्रदान करने के लिए निर्देश किया गया - कानून की व्याख्या - संकीर्ण निर्माण - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 12 ।

अपीलकर्ता-जल संस्थान ने जिला न्यायाधीश के आदेश को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष अपील दायर की, जिसके तहत उन्होंने मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के तहत इनकी आपत्ति को खारिज कर दिया। अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील दायर की। स्थगन के लिए आवेदन में, उच्च न्यायालय ने जल संस्थान को मध्यस्थ द्वारा दी गई पूरी राशि जमा करने का निर्देश दिया, जिससे दावेदार-प्रत्यर्थी को उक्त राशि का आधा हिस्सा बिना प्रतिभूति जमा किए और शेष आधा प्रतिभूति जमा करने पर निकालने की अनुमति दी गई।

जल संस्थान द्वारा दायर तात्कालिक अपील में, अपीलकर्ता के लिए यह तर्क दिया गया था कि उच्च न्यायालय ने संपूर्ण पंचाट राशि जमा करने और दावेदार-प्रत्यर्थी के पक्ष में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 नियम 5 के सिद्धांत को लागू करने का निर्देश देकर त्रुटि की है। हालांकि उक्त सिद्धांत अपीलकर्ता पर लागू नहीं था जो कि राज्य की एक विस्तारित शाखा थी। यह प्रस्तुत किया गया कि आदेश 41 नियम 5, सीपीसी को आदेश 27 नियम 8ए सीपीसी के अनुरूप पढ़ा जाना था और ऐसे सामंजस्यपूर्ण पढन पर यह स्पष्ट होगा कि किसी सरकारी संगठन पर ऐसी शर्त नहीं लगाई जा सकती थी।

कोर्ट ने अपील का निस्तारण करते हुए

अभिनिर्धारित किया:

1.1. मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 35 और 36 यह स्पष्ट करती है कि पंचाट तब लागू करने योग्य हो जाता है जब मध्यस्थता पंचाट को रद्द करने के लिए आवेदन करने का समय समाप्त हो गया हो या दायर होने के बाद इसे अस्वीकार कर दिया गया हो और इसके अलावा यह लागू करने योग्य ठीक वैसे ही है जैसे ये न्यायालय की कोई डिक्री हो। इस प्रकार, पंचाट में प्रवर्तन की क्षमता है। इसलिए, जब अधिनियम की धारा 34 के तहत अधिमानित आपत्ति की अस्वीकृति के खिलाफ अपील दायर की जाती है, तो पंचाट की प्रवर्तनीयता को पूर्ण आधार मिल जाता है। यदि स्थगन के लिए आवेदन दायर किया जाना है, तो इसे मध्यस्थ द्वारा पारित पंचाट के संचालन पर स्थगन लगाने के संबंध में दायर किया जाना चाहिए। आपत्ति को खारिज करने वाली न्यायालय केवल आपत्ति पर विचार करने से मना करती है और उसके बाद, पंचाट लागू करने योग्य हो जाता है जैसे कि यह एक डिक्री थी। किसी अन्य कानून के संबंध में अधिनियम के तहत पंचाट की स्थिति जो भी हो, लेकिन जब इसे अधिनियम की धारा 37 के तहत अपील में चुनौती दी जाती है, तो सिविल प्रक्रिया संहिता का अंतर्निहित सिद्धांत लागू होता है। [पैरा 9 और 14] [72-डी-जी; 75-ई]

परमजीत सिंह पथेजा बनाम आई.सी.डी.एस लिमिटेड 2006 (8) अनुपूरक एस.सी.आर 178 = (2006) 13 एस.सी.सी 322 - संदर्भित।

1.2. आदेश 41, नियम 5, सी.पी.सी उच्च न्यायालय के समक्ष की गई अपील पर लागू होता है, क्योंकि अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो अपीलीय न्यायालय को सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्निहित सिद्धांतों का अनुसरण करने से स्थगन सके, जब तक कि वे अधिनियम के तहत निहित भावना व दिए गए सिद्धांतों के अनुरूप हों। [पैरा 15] [76-ए-बी]

मेसर्स पांडे एंड कंपनी बिल्डर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम बिहार राज्य और अन्य 2006 (8) अनुपूरक एस.सी.आर 1997 = ए.आई.आर 2007 एस.सी 465 - पर निर्भर किया गया।

कयामुद्दीन शम्सुद्दीन खान बनाम भारतीय स्टेट बैंक (1998) 8 एस.सी.सी 676; और सीहोर नगर पालिका ब्यूरो बनाम भाभलुभाई विराभाई एंड कंपनी (2005) 4 एस.सी.सी 1 - संदर्भित।

2.1. विधायिका ने आदेश 27 नियम 8क में "सरकार" शब्द का प्रयोग किया है और इसे आदेश 27 नियम 8ख में परिभाषित किया गया है। आशय बिल्कुल साफ और स्पष्ट है, विशिष्टता में इसका अर्थ है "सरकार"। आदेश 27 नियम 8क और नियम 8ख में प्रयुक्त भाषा से इसका अर्थ केवल "सरकार" है। वास्तव में नियम 8ख में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "केंद्र सरकार द्वारा या उसके खिलाफ या सरकार की सेवा में किसी लोक अधिकारी के खिलाफ किसी भी वाद के संबंध में" और राज्य सरकार के लिए भी इसी तरह की भाषा का उपयोग किया जाता है।

इसलिए, विधायिका ने जानबूझकर एक सीमित परिभाषा का उपयोग किया है और इसका दायरा व्याख्यात्मक प्रक्रिया द्वारा राज्य की किसी एजेंसी या साधन को सम्मिलित करने के लिए विस्तारित नहीं किया जा सकता है। विधायिका ने "सरकार" शब्द को परिभाषित किया है ताकि व्याख्या और अनुमानों के लिए कोई जगह न रहे। इसका मतलब या तो केंद्र सरकार या राज्य सरकार और कुछ मामलों में राज्य की सेवा में लोक अधिकारी है। आदेश 27 नियम 8क और नियम 8ख केवल सरकार पर लागू होते हैं तथा राज्य के किसी साधन या एजेंसी पर नहीं। अत: यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि अपीलकर्ता जल संस्थान होने के कारण सरकार के विस्तारित शाखा में आएगा। [पैरा 21, 23, 29 और 30] [79-एफ-जी; 80-एफ-जी; 86-सी-ई, जी-एच; 87-ए]

पंजाब राज्य और अन्य बनाम राजा राम और अन्य 1981 (2) एस.सी.आर 712 = (1981) 2 एस.सी.सी 66; रमना दयाराम शेट्टी बनाम भारतीय अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा प्राधिकरण और अन्य 1979 (3) एस.सी.आर 1014 = (1979) 3 एस.सी.सी 489; पशुपति नाथ सुकुल बनाम नेम चंद्र जैन और अन्य 1984 (1) एस.सी.आर 939 = (1984) 2 एस.सी.सी 404; प्रद्यात कुमार बोस बनाम कलकत्ता उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायाधीश (1955) 2 एस.सी.आर 1331; आर.एस. नायक बनाम ए.आर. अंतुले 1984 (2) एस.सी.आर 495 = (1984) 2 एस.सी.सी 183 - पर निर्भर किया गया।

केरल राज्य बनाम कुरुविला ए.आई.आर 2004 केरला 233; और कलेक्टर, कटक बनाम पद्म चरण मोहंती 50 (1980) सी.एल.टी 191 - को अप्रयोज्य माना गया।

उत्कल कॉन्ट्रैक्टर्स एवं जॉइनरी प्रा. लिमिटेड और अन्य बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य 1987 (3) एस.सी.आर 3147 = ए.आई.आर 1987 एस.सी 1454; उप. मुख्य आयात एवं निर्यात नियंत्रक, नई दिल्ली बनाम के.टी. कोसलराम और अन्य 1971 (2) एस.सी.आर 507 = (1970) 3 एस.सी.सी 82 - संदर्भित किया गया।

2.2. कुछ संदर्भों में "सरकार" शब्द को उदारतापूर्वक समझने की आवश्यकता हो सकती है और कुछ परिस्थितियों में इसे एक संकीर्ण दायरे में समझना होगा। संविधान के अनुच्छेद 12 के अंतर्गत प्रयुक्त "राज्य" की अवधारणा "कार्यकारी सरकार" के अर्थ से काफी भिन्न है। राज्य के किसी प्राधिकरण या साधन या राज्य की एजेंसी को निष्पक्ष, गैर-मनमाने ढंग से और उचित तरीके से कार्य करना होता है और वास्तव में, संविधान के अध्याय III द्वारा नियंत्रित किया जाता है, लेकिन यह सभी प्रयोजन हेतु "सरकार" के चरित्र को ग्रहण नहीं करता है। [पैरा 27 और 29] [84-एफ-जी; 86-बी-सी]

चंद्र मोहन खन्ना बनाम राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद और अन्य 1991 (1) अनुपूरक एस.सी.आर 165 = (1991) 4 एस.सी.सी 578 - संदर्भित किया गया ।

3. उच्च न्यायालय ने राशि जमा करने और उसका 50% बिना प्रतिभूति दिए निकालने और बाकी आधा प्रतिभूति जमा करने के बाद निकालने का निर्देश दिया है। उच्च न्यायालय ने ऐसी वापसी की अनुमति देने के लिए कोई उचित कारण नहीं बताया है। आदेश को संशोधित किया गया है और अपीलकर्ता जिला न्यायाधीश की संतुष्टि के लिए पूरी राशि के लिए प्रतिभूति प्रदान करेगा। [पैरा 31] [87-बी-डी]

केस कानून संदर्भ:

ए.आई.आर 2004 केरला 233 को अप्रयोज्य माना	पैरा 6
2006 (8) अनुपूरक एस.सी.आर 178 को संदर्भित करता है	पैरा 13
2006 (8) अनुपूरक एस.सी.आर 997 पर निर्भर था	पैरा 15
(1998) 8 एस.सी.सी 676 को संदर्भित करता है	पैरा 17
(2005) 4 एस.सी.सी 1 को में संदर्भित करता है	पैरा 18
1987 (3) एस.सी.आर 317 को संदर्भित करता है	पैरा 22
1971 (2) एस.सी.आर 507 को संदर्भित करता है	पैरा 22
1981 (2) एस.सी.आर 712 पर निर्भर था	पैरा 23

1979 (3) एस.सी.आर 1014 पर निर्भर था पैरा 24

1984 (1) एस.सी.आर 939 पर निर्भर था पैरा 25

(1955) 2 एस.सी.आर 1331 पर निर्भर था पैरा 25

1984 (2) एस.सी.आर 495 पर निर्भर था पैरा 26

1991 (1) अनुपूरक एस.सी.आर 165 को संदर्भित करता है पैरा 27

50 (1980) सी.एल.टी 191 को अप्रयोज्य माना पैरा 30

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: की सिविल अपील संख्या 26/2014।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अपील संख्या 875/2013 में पारित अंतिम निर्णय और आदेश दिनांक 17.07.2013 से उत्पन्न।

अपीलकर्ताओं के लिए शैल कुमार द्विवेदी, गुन्नम वेंकटेश्वर राव, सिद्धार्थ कृष्ण द्विवेदी।

प्रत्यर्थी की ओर से प्रदीप कुमार यादव, पी.जे. मलकान, अमित कुमार यादव और पूर्विश, जीतेन्द्र मलकान।

न्यायालय का निर्णय सुनाया गया

दीपक मिश्रा, जे. द्वारा -

1. अनुमति स्वीकृत।

2. 2013 के एफ.ए.एफ.ओ संख्या 875 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 17.7.2013 के आदेश के बचाव पर सवाल

उठाते हुए, अपील को स्वीकार करने के बाद, स्थगन के लिए आवेदन पर विचार करते हुए, खण्ड न्यायपीठ ने निर्देश दिया कि अपीलकर्ताओं को मध्यस्थ द्वारा दी गई पूरी राशि नीचे की न्यायालय में जमा करनी होगी, जिसमें एक और निर्देश होगा कि दावेदार-प्रत्यर्थी को उक्त राशि का आधा हिस्सा बिना प्रतिभूति जमा किए वापस लेने की अनुमति दी जाए और शेष आधी राशि जिला न्यायाधीश, कानपुर की संतुष्टि के लिए प्रतिभूति जमा करने के बाद निकाली जाए जिसके साथ आगे शर्त यह है कि जमा करने में चूक के मामले में, स्थगन का आदेश स्वचालित रूप से रद्द हो जाएगा।

3. इस अपील के निर्णय के लिए जो आवश्यक तथ्य बताए जाने हैं, वे यह हैं कि यहां अपीलकर्ता, कानपुर जल संस्थान और प्रत्यर्थी, मेसर्स बापू कंस्ट्रक्शन के बीच एक समझौता 10.06.1987 को रुपए 21,43,200/- मे "धीमे रेत फिल्टर के लिए रेत की आपूर्ति के लिए अनुबंध में निहित शर्तों के अनुसार कार्य 23.5.1987 को शुरू होना था और एक वर्ष के भीतर पूरा होना था। अनुबंध के अस्तित्व के दौरान पक्षकारों के बीच विवाद उत्पन्न हुए जिसके परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी ने नियुक्ति के लिए मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (संक्षिप्तता के लिए "अधिनियम") की धारा 11(5) और (6) के तहत एक आवेदन एक मध्यस्थ की नियुक्ति हेतु दायर किया। विद्वान मध्यस्थ नियुक्त होने के बाद, वह मध्यस्थता के साथ आगे बढ़े और अंततः 20.1.2009 को एक पंचाट पारित किया, जिसमें प्रत्यर्थी के दावे को कुल रुपये 32,62,415.30 का

पंचाट देकर एक और शर्त के साथ कि उक्त राशि पर वर्ष 1988 से 18% प्रति वर्ष की दर से ब्याज लगेगा स्वीकार किया गया । अपीलकर्ता ने दिनांक 20.1.2009 के पंचाट को रद्द करने के लिए अधिनियम की धारा 34 के तहत एक आपत्ति कई आधारों पर 2003 की मध्यस्थता याचिका संख्या 32 दायर की। विद्वान जिला न्यायाधीश, कानपुर ने अपने आदेश दिनांक 30.3.2013 द्वारा उस याचिका को खारिज कर दिया जो विविध प्रकरण संख्या 40/70, 2009 का विषय था।

4. विद्वान जिला न्यायाधीश के समक्ष आपत्ति को बरकरार रखने में विफलता ने अपीलकर्ता को इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष एफ.ए.एफ.ओ संख्या 875/2013 दाखिल करने के लिए मजबूर किया। अपील के साथ स्थगन की अर्जी भी दाखिल की गई। खण्ड न्यायपीठ ने एक अंतरिम आदेश पारित किया, जैसा कि यहां पहले उल्लेख किया गया है।

5. हमने अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री शैल कुमार द्विवेदी और प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री प्रदीप कुमार यादव को सुना।

6. आदेश की औचित्यता की आलोचना करते हुए, अपीलकर्ता के विद्वान वकील श्री द्विवेदी ने प्रस्तुत किया है कि खण्ड न्यायपीठ ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLI नियम 5 का सिद्धांत को लागू करते हुए

संपूर्ण पंचाट राशि जमा करने और उक्त दावेदार-प्रत्यर्थी के पक्ष में जारी करने का निर्देश देकर गलती की है। हालांकि उक्त सिद्धांत अपीलकर्ता पर लागू नहीं है जो राज्य की एक विस्तारित शाखा है। उनके द्वारा आग्रह किया गया कि खण्ड न्यायपीठ मामले की खूबियों का विश्लेषण करने में विफल रही है, अर्थात् मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए आवेदन दाखिल करने में भारी देरी, दावों की प्रकृति जो बिल्कुल पुरानी हैं और इसके अलावा, पंचाट कैसे स्पष्ट रूप से लोक नीति का उल्लंघन करते हुए दिया गया है। उनके द्वारा आगे आग्रह किया गया कि संहिता के आदेश XLI नियम 5 के सिद्धांत को संहिता के आदेश XXVII नियम 8क के साथ सामंजस्य में पढ़ा जाना चाहिए और इस तरह के सामंजस्यपूर्ण पढ़ने पर यह सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट है कि किसी सरकारी संगठन पर ऐसी शर्त लगाए जाने की क्षमता नहीं है। अपनी दलील के समर्थन में उन्होंने केरल राज्य बनाम कुरुविला.[1] मामले में निर्णय के लिए हमारी सराहना की है।

7. प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री यादव ने उपरोक्त दलीलों का विरोध करते हुए तर्क दिया कि अधिनियम की धारा 34 के तहत दर्ज की गई आपत्ति को खारिज कर दिए जाने के बाद, विद्वान मध्यस्थ द्वारा पारित पंचाट स्वयं निष्पादन योग्य हो जाता है और इसलिए, इसे धन डिक्री की स्थिति प्राप्त है और इसलिए, खण्ड न्यायपीठ ने शर्तों को सही ढंग से लागू किया है और इसलिए, उक्त आदेश में कोई दोष नहीं पाया जा सकता है। उनका तर्क है कि आदेश XLI नियम 5 और आदेश XXVII

नियम 8क को अलग-अलग डिब्बों में रखा जाना चाहिए, ऐसा न करने पर डिक्री धारक काफी समय तक डिक्री का फल प्राप्त नहीं कर पाएगा और अंततः यह कागजी शेर बनकर रह जाएगा। उन्होंने सीहोर नगर पालिका ब्यूरो बनाम भाभलुभाई विराभाई एंड कंपनी.[2] के फैसले से यह उजागर करने के लिए प्रेरणा ली है कि इस न्यायालय ने आदेश XLI नियम 5 सी.पी.सी के पीछे के सिद्धांत को एक नगर पालिका पर लागू किया था और एक "जल संस्थान" को नगर पालिका से बेहतर दर्जा प्राप्त नहीं है।

8. विधिज्ञ में उठाए गए प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों की सराहना करने के लिए हम अधिनियम की योजना का उल्लेख करना उचित समझते हैं। अधिनियम के तहत, मध्यस्थ द्वारा पंचाट पारित किए जाने के बाद, भाग 1 के तहत मध्यस्थता से संबंधित अध्याय VII के तहत मध्यस्थ पंचाट को अपास्त करने के लिए एक आवेदन की अनुमति है। भाग 1 में होने वाला अध्याय VIII मध्यस्थ पंचाटों की अंतिमता और प्रवर्तन के बारे में है। इस अध्याय में आने वाली धारा 35 और 36 को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

> "35. माध्यस्थम् पंचाटों की अंतिमता - इस भाग के अधीन माध्यस्थम् पंचाट अंतिम होगा और पक्षकारों तथा, यथास्थिति, उनके अधीन दावा करने वाले व्यक्तियों पर, बाध्यकारी होगा ।

36. प्रवर्तन - जहां धारा 34 के अधीन माध्यस्थम् पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन करने का समय समाप्त हो गया है या ऐसा आवेदन किए जाने पर, उसे नामंजूर कर दिया गया है, वहां पंचाट, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन उसी रीति से प्रवर्तित किया जाएगा मानो वह न्यायालय की डिक्री हो।"

9. दोनों प्रावधानों को पढ़ने पर यह दिन के समान स्पष्ट है कि पंचाट तब लागू करने योग्य हो जाता है जब मध्यस्थ पंचाट को रद्द करने के लिए आवेदन करने का समय समाप्त हो गया हो या दायर करने से इनकार कर दिया गया हो और आगे यह इस प्रकार लागू करने योग्य है, मानो यह न्यायालय की डिक्री थी। इस प्रकार, पंचाट में प्रवर्तन की क्षमता है। इसलिए, जब अधिनियम की धारा 34 के तहत की गई आपत्ति की अस्वीकृति के खिलाफ अपील दायर की जाती है, तो पंचाट की प्रवर्तनीयता को पूर्ण आधार मिलता है। यदि स्थगन के लिए आवेदन दायर किया जाना है, तो इसे मध्यस्थ द्वारा पारित पंचाट के संचालन पर रोक लगाने के संबंध में दायर किया जाना चाहिए। हम ऐसा सोचने के लिए तैयार हैं क्योंकि आपत्ति को खारिज करने वाली न्यायालय केवल आपत्ति पर विचार करने से इनकार करता है और उसके बाद पंचाट लागू करने योग्य हो जाता है जैसे कि यह एक डिक्री थी। वर्तमान मामले में, यह स्पष्ट नहीं है कि पंचाट पर रोक लगाने के लिए याचना की गई थी या नहीं। हालाँकि, हम

इसे ऐसे मानते हैं जैसे कि पंचाट पर रोक लगाने के लिए याचना की गई हो और उसके अनुसार आगे बढ़ें।

10. इस समय, हम लाभ के साथ अधिनियम की धारा 19 का उल्लेख कर सकते हैं जो अधिनियम के अध्याय V में आती है जो मध्यस्थ कार्यवाही के संचालन से संबंधित है। यह प्रक्रिया के नियमों के निर्धारण का प्रावधान करता है। इसे इस प्रकार पढ़ा जाता है:

"19. प्रक्रिया के नियमों का अवधारण-

(1) माध्यस्थम् अधिकरण, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) से आबद्ध नहीं होगा ।

(2) इस भाग के अधीन रहते हुए, पक्षकार, माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा अपनी कार्यवाहियों के संचालन में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया पर करार करने के लिए स्वतंत्र हैं ।

(3) उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी करार के न होने पर माध्यस्थम् अधिकरण, इस भाग के अधीन रहते हुए ऐसी रीति से, जो वह समुचित समझे, कार्यवाहियों का संचालन कर सकेगा ।

(4) उपधारा (3) के अधीन माध्यस्थम् अधिकरण की शक्ति में किसी साक्ष्य की ग्राह्यता, सुसंगता, तात्विकता और महत्व का अवधारण करने की शक्ति भी सम्मिलित है ।"

11. अधिनियम की धारा 2(ङ) "न्यायालय" को परिभाषित करती है जिसके अनुसार किसी जिले में आरंभिक अधिकारिता वाला प्रधान सिविल न्यायालय अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत अपनी मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय भी है, जो माध्यस्थम् की विषय-वस्तु होने वाले प्रश्नों का, यदि वे वाद की विषय-वस्तु होते तो, विनिश्चय करने की अधिकारिता रखता, किन्तु ऐसे प्रधान सिविल न्यायालय से अवर श्रेणी का कोई सिविल न्यायालय या कोई लघुवाद न्यायालय इसके अन्तर्गत नहीं आता है।

12. अधिनियम की धारा 37 अपील योग्य आदेशों से संबंधित है। संपूर्णता के लिए इसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"37. अपीलनीय आदेश -

(1) निम्नलिखित आदेशों से (न कि अन्यों से) कोई अपील उस न्यायालय में होगी जो आदेश पारित करने वाले न्यायालय की मूल डिक्रियों से अपील सुनने के लिए विधि द्वारा प्राधिकृत हो, अर्थात् :-

(क) धारा 9 के अधीन किसी उपाय को मंजूर करना या मंजूर करने से इंकार करना ;

(ख) धारा 34 के अधीन माध्यस्थम् पंचाट अपास्त करना या अपास्त करने से इंकार करना ।

(2) माध्यस्थम् अधिकरण के -

(क) धारा 16 की उपधारा (2) या उपधारा (3) में निर्दिष्ट अभिवचन स्वीकार करने के ; या

(ख) धारा 17 के अधीन किसी अंतरिम उपाय को मंजूर करने या मंजूर करने से इंकार करने के, किसी आदेश से भी अपील न्यायालय में होगी ।

(3) इस धारा के अधीन अपील में पारित किसी आदेश से द्वितीय अपील नहीं होगी, किन्तु इस धारा की कोई भी बात, उच्चतम न्यायालय में अपील करने के किसी अधिकार पर प्रभाव न डालेगी या उसे छीन न लेगी ।"

13. इस स्तर पर, हम परमजीत सिंह पथेजा बनाम आई.सी.डी.एस लिमिटेड.[3] में पारित निर्णय का उल्लेख करने के लिए बाध्य हैं। उक्त मामले में यह सवाल उठा कि क्या अधिनियम के तहत एक मध्यस्थ अधिकरण द्वारा पारित पंचाट प्रेसीडेंसी टाउन इन्सॉल्वेंसी एक्ट, 1909 के प्रावधान के प्रयोजनों के लिए एक डिक्री है । दो न्यायाधीशों की पीठ ने मध्यस्थता

अधिनियम 1899, प्रेसीडेंसी टाउन्स इन्सॉल्वेंसी एक्ट, 1909 और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के विभिन्न प्रावधानों का उल्लेख किया, जिसके तहत डिक्री की अवधारणा संहिता, मध्यस्थता अधिनियम, 1940 और मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 36 में पंचाट के संबंध में निहित प्रावधान और निम्नानुसार राय दी गई है:

> "वास्तव में, धारा 36 1899 अधिनियम की धारा 15 से आगे जाती है और बिना किसी संदेह के यह स्पष्ट करती है कि प्रवर्तनीयता केवल सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत है। यह किसी भी तर्क को खारिज करता है कि डिक्री के रूप में प्रवर्तनीयता की मांग किसी अन्य कानून के तहत की जा सकती है या दिवालिया कार्यवाही शुरू करना सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत डिक्री को लागू करने का एक तरीका है।"

विद्वान न्यायाधीशों ने आगे सिद्धांतों पर चर्चा करते हुए इस प्रकार कहा:

> "दिवाला अधिनियम के तहत नोटिस जारी करना गंभीर परिणामों से भरा है: इसका उद्देश्य उस व्यक्ति की स्थिति में भारी बदलाव लाना है जिसके खिलाफ नोटिस जारी किया गया है अर्थात उसे सभी संबंधित निर्योग्यताओं के साथ दिवालिया घोषित करने के लिए। इसलिए, सबसे पहले, इस

तरह के नोटिस को केवल नियमित रूप से गठित न्यायालय, न्याय प्रदान करने के लिए स्थापित न्यायिक अंग के एक घटक, द्वारा धन के भुगतान के लिए डिक्री या आदेश पारित करने के बाद ही जारी करने का इरादा था। दूसरे, दिवाला अधिनियम के तहत नोटिस कर्ज वसूलने का एक तरीका नहीं है; धन की वसूली के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत उपलब्ध निष्पादन के लिए कदम उठाकर प्रवर्तन किया जाता है।

42. शब्द "मानो" प्रदर्शित करते हैं कि पंचाट और डिक्री या आदेश दो अलग-अलग चीजें हैं। बनाई गई कानूनी कल्पना डिक्री के रूप में प्रवर्तन के सीमित उद्देश्य के लिए है। कल्पना का आशय इसे सभी कानूनों के तहत सभी उद्देश्यों के लिए एक डिक्री बनाना नहीं है, चाहे वह राज्य हो या केंद्र।"

14. हमने उपरोक्त निर्णय को केवल इस उद्देश्य के लिए संदर्भित किया है कि किसी अन्य क़ानून के संबंध में अधिनियम के तहत पंचाट की स्थिति जो भी हो, लेकिन जब इसे अधिनियम की धारा 37 के तहत अपील में चुनौती दी जाती है तो इस पर सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्निहित सिद्धांत लागू है। हमने सोचा है कि हमें स्थिति स्पष्ट करनी

चाहिए क्योंकि यह समझ में नहीं आ सकता है कि परमजीत सिंह पथेजा (उपरिलिखित) के निर्णय में यह बताया गया है कि यह सभी उद्देश्यों के लिए एक डिक्री नहीं है और अपील को प्राथमिकता देते समय संहिता के तहत सिद्धांत लागू नहीं होते हैं।

15. मेसर्स पांडे एंड कंपनी बिल्डर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम बिहार राज्य और अन्य,[4] यह माना गया है कि अपीलीय न्यायालय का एक फोरम 1996 अधिनियम में निहित परिभाषा के संदर्भ में निर्धारित किया जाना चाहिए। उपरोक्त निर्णय इस निष्कर्ष को और पुष्ट करता है कि आदेश XLI नियम 5 सैद्धांतिक रूप से उच्च न्यायालय के समक्ष दायर अपील पर लागू होता है, क्योंकि अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो अपीलीय न्यायालय को सिविल संहिता प्रक्रिया के अंतर्निहित सिद्धांतों का सहारा नहीं लेने से रोकता हो, तब तक जब तक वे अधिनियम के तहत निहित भावना व सिद्धांतों के अनुरूप हों।

16. वर्तमान में आदेश XLI की संरचना। यह मूल डिक्री की अपीलों से निपटता है। आदेश XLI नियम 5 अपीलीय न्यायालय द्वारा स्थगन लगाने का प्रावधान करता है। संपूर्ण चित्र प्राप्त करने के लिए, नियम को संपूर्णता में पुनः प्रस्तुत करना आवश्यक है:

"5. अपील न्यायालय द्वारा रोका जाना -

(1) अपील का प्रभाव जिस डिक्री या आदेश की अपील की गई है, उसके अधीन की कार्यवाहियों को रोकना नहीं होगा, किन्तु यदि अपील न्यायालय आदेश दे तो कार्यवाहियां रोकी जा सकेंगी । केवल इस कारण से कि डिक्री से अपील की गई है, डिक्री का निष्पादन नहीं हो जाएगा, किन्तु अपील न्यायालय ऐसी डिक्री के निष्पादन के रोके जाने के लिए आदेश पर्याप्त हेतुक से दे सकेगा ।

(2) जिस न्यायालय ने डिक्री पारित की थी उसके द्वारा रोका जाना - जहां किसी अपीलनीय डिक्री के निष्पादन के रोके जाने के लिए आवेदन उस समय के अवसान से पूर्व जो उसकी अपील करने के लिए अनुज्ञात है, किया जाता है वहां डिक्री पारित करने वाला न्यायालय निष्पादन के रोके जाने के लिए आदेश पर्याप्त हेतुक दर्शित किए जाने पर दे सकेगा ।

(3) निष्पादन रोके जाने के लिए कोई भी आदेश उपनियम (1) या उपनियम (2) के अधीन तब तक नहीं किया जाएगा जब तक उसे देने वाले न्यायालय का यह समाधान नहीं हो जाता कि -

(क) यदि वह आदेश न किया गया तो परिणाम यह हो सकता है कि निष्पादन के रोके जाने का आवेदन करने वाले पक्षकार को सारवान् हानि हो ;

(ख) आवेदन अयुक्तियुक्त विलम्ब के बिना किया गया है ; तथा

(ग) आवेदक ने किसी डिक्री या आदेश के सम्यक् रुप से पालन के लिए जो अन्त में उसके लिए आबद्धकर हो, प्रतिभूति दे दी है ।

(4) उपनियम (3) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, न्यायालय आवेदन की सुनवाई लम्बित रहने तक निष्पादन के रोके जाने के लिए एक पक्षीय आदेश कर सकेगा ।

(5) पूर्वगामी उपनियमों में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहां अपीलार्थी नियम 1 के उपनियम (3) में विनिर्दिष्ट निक्षेप करने में प्रतिभूति देने में असफल रहता है वहां न्यायालय डिक्री का निष्पादन रोकने वाला आदेश नहीं करेगा "

17. इस स्तर पर, आदेश XLI नियम 5 की योजनाबद्ध सामग्री को ध्यान में रखते हुए, हम कुछ विनिश्चयो को यह बताने के लिए उचित समझते हैं कि उक्त नियम में प्रयुक्त भाषा को इस न्यायालय द्वारा कैसे

सराहा और समझा गया है। कयामुद्दीन शम्सुद्दीन खान बनाम भारतीय स्टेट बैंक [5] में जमा से संबंधित प्रावधान का आदेश देते समय न्यायालय को कहना पड़ा:

> "...कि आदेश XLI के नियम 1 के उप-नियम (3) के तहत जमा के संबंध में दिए गए निर्देश का अनुपालन न करने पर न्यायालय डिक्री के निष्पादन पर रोक लगाने से इनकार कर देगा। दूसरे शब्दों में, ऐसे अपालन के लिए डिक्री के निष्पादन पर रोक लगाने के आवेदन को खारिज किया जा सकता है, लेकिन न्यायालय ऐसे अपालन के लिए अपील को खारिज करने का निर्देश नहीं दे सकता है।"

18. सीहोर नगर पालिका ब्यूरो बनाम भभलुभाई विराभाई एंड कंपनी.,[6] में यह न्यायालय उस स्थिति से निपट रहा था जहां अपीलकर्ता नगर पालिका ने गुजरात नगर पालिका अधिनियम, 1963 के प्रावधानों द्वारा गठित और शासित होकर अपील में एक धन डिक्री पर हमला किया था और अपील में उच्च न्यायालय ने निष्पादन पर रोक लगाने का निर्देश दिया था। धन डिक्री का संचालन इस शर्त के अधीन है कि अपीलकर्ता एक निश्चित तिथि तक ब्याज सहित एक निश्चित राशि जमा करेगा। उस संदर्भ में न्यायालय ने आदेश XLI नियम 1(3) और 5(5) पर विचार किया और इस प्रकार राय दी:

"आदेश 41 नियम 1(3) सिविल प्रक्रिया संहिता में प्रावधान है कि राशि के भुगतान की डिक्री के खिलाफ अपील में अपीलकर्ता, अपीलीय न्यायालय द्वारा अनुमत समय के भीतर, अपील में विवादित राशि जमा करेगा या उसके संबंध में ऐसी प्रतिभूति प्रस्तुत करेगा जैसा कि न्यायालय उचित समझे। आदेश 41 नियम 5(5) के तहत, एक जमा या प्रतिभूति, जैसा कि ऊपर कहा गया है, डिक्री के निष्पादन पर रोक लगाने वाले अपीलीय न्यायालय के आदेश के लिए एक शर्त है। यहां ऊपर उल्लिखित दो प्रावधानों को पढ़ने से पता चलता है कि अपीलीय न्यायालय को अपील में विवादित राशि जमा करने का निर्देश देने या उसके संबंध में ऐसी प्रतिभूति प्रदान करने की अनुमति देने का विवेकाधिकार प्रदान किया गया है, जिसे अपीलीय न्यायालय उचित समझे। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि किसी दिए गए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर विवेक का प्रयोग न्यायिक रूप से किया जाना चाहिए न कि मनमाने ढंग से। आमतौर पर, धन डिक्री के निष्पादन पर रोक नहीं लगाई जाती है क्योंकि धन डिक्री की संतुष्टि अपूरणीय क्षति नहीं होती है और अपील की अनुमति होने की स्थिति में, सफल पक्ष के लिए क्षतिपूर्ति का उपाय

हमेशा उपलब्ध होता है। फिर भी यह शक्ति मौजूद है, निःसंदेह एक विवेकाधीन शक्ति है, और इसका प्रयोग उचित मामलों में किया जाना चाहिए।"

[जोर दिया गया]

19. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा यह प्रस्तुत किया गया कि किसी भी टकराव से बचने के लिए संहिता के आदेश XLI नियम 5 और XXVII नियम 8क में निहित प्रावधानों को सामंजस्यपूर्ण ढंग से पढ़ा जाना चाहिए। आदेश XXVII का नियम 8क इस प्रकार है:

"8क. कुछ मामलों में सरकार से या लोक अधिकारी से कोई प्रतिभूति अपेक्षित न की जाएगी - सरकार से या जहां सरकार ने वाद की प्रतिरक्षा का जिम्मा लिया है वहां किसी ऐसे लोक अधिकारी से जिस पर किसी ऐसे कार्य के बारे में वाद लाया गया है जिसके सम्बन्ध में यह अभिकथित किया गया है कि वह उसने अपनी पदीय हैसियत में किया है आदेश XLI के नियम 5 और नियम 6 में यथावर्णित प्रतिभूति की अपेक्षा नहीं की जाएगी ।"

20. जहां तक सरकार का सवाल है तो इसे आदेश XXVII नियम 8ख में परिभाषित किया गया है। यह इस प्रकार है :-

"8 ख. "सरकार" और "सरकारी प्लीडर" की परिभाषाएं - इस आदेश में जब तक कि अभिव्यक्त रुप से अन्यथा उपबन्धित न हो, "सरकार" और "सरकारी प्लीडर" से क्रमश -

(क) ऐसे वाद के सम्बन्ध में जो केन्द्रीय सरकार द्वारा या उसके विरुद्ध है या उस सरकार की सेवा में के किसी लोक अधिकारी के विरुद्ध है, केन्द्रीय सरकार और ऐसा प्लीडर अभिप्रेत है जो वह सरकार, चाहे साधारणत: या विशेषत: इस आदेश के प्रयोजनों के लिए नियुक्त करे ;

(ख) (ए.ओ. 1948 द्वारा लोपित)

(ग) ऐसे वाद के सम्बन्ध में जो राज्य सरकार द्वारा या उसके विरुद्ध है या राज्य की सेवा में के लोक अधिकारी के विरुद्ध है, राज्य सरकार और धारा 2 के खण्ड (7) में यथापरिभाषित सरकारी प्लीडर या ऐसा अन्य प्लीडर अभिप्रेत है जो राज्य सरकार, चाहे साधारणत:, या विशेषत: इस आदेश के प्रयोजनों के लिए नियुक्त करे ।"

21. विधायिका ने "सरकार" शब्द को परिभाषित करते हुए व्याख्या और अनुमानों के लिए कोई जगह नहीं दी है। इसका मतलब या तो केंद्र सरकार या राज्य सरकार और कुछ मामलों में राज्य की सेवा में लोक अधिकारी है। अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने तर्क दिया है कि अपीलकर्ता "

कानपुर जल संस्थान " राज्य की एक विस्तारित शाखा है और इसलिए, सरकार का एक हिस्सा है। उपरोक्त प्रावधानों पर एक नज़र डालने पर यह स्पष्ट है कि यह स्पष्ट रूप से एक धारणा देता है कि जहां तक सरकार या एक लोक अधिकारी का संबंध है, कुछ मामलों में आदेश XLI नियम 5 में सम्मिलित शर्तें लागू नहीं होंगी।

22. उपरोक्त प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, जिस संदर्भ में इसका उपयोग किया गया है, उसमें सरकार के निश्चित चरित्र की सराहना करना आवश्यक है। उत्कल कॉन्ट्रैक्टर्स एंड जॉइनरी प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य,[7] में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि, जबकि एक अधिनियम के शब्द महत्वपूर्ण हैं, संदर्भ भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। यह भी कहा गया है कि कानून में कोई भी प्रावधान और कानून के किसी भी शब्द को अलग करके नहीं समझा जा सकता है। सेटिंग और पैटर्न के महत्व को ध्यान में रखा जाना चाहिए। उप मुख्य नियंत्रक (आयात एवं निर्यात), नई दिल्ली बनाम के.टी. कोसलराम और अन्य,[8] इस न्यायालय ने निम्नानुसार देखा है:

> "किसी दिए गए उपकरण में शब्दों और वाक्यांशों से क्या विशेष अर्थ जुड़ा होना चाहिए, यह आमतौर पर संदर्भ, विषय-वस्तु की प्रकृति, लेखक के उद्देश्य या इरादे प्राप्त की जाने वाली उद्देश्य और उन्हें एक या दूसरे पर अनुमेय अर्थ

देने के प्रभाव से इकट्ठा किया जाना चाहिए। आख़िरकार शब्दों का उपयोग केवल वक्ता या लेखक के विचार को व्यक्त करने के लिए एक माध्यम के रूप में किया जाता है और इसलिए, शब्दों को स्वाभाविक रूप से इस तरह से समझा जाता है कि वे उस विचार के साथ उपयुक्त हो सकें जो पूरे संदर्भ पर विचार करने पर उभरता है। प्रत्येक शब्द एक प्रतीक मात्र है जो एक या अनेक वस्तुओं का प्रतीक हो सकता है। संदर्भ, जिसमें विभिन्न अर्थों को व्यक्त करने वाले शब्द का उपयोग किया जाता है, उस सटीक अर्थ को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण होता है जो लेखक द्वारा बताए गए संदर्भ के साथ उपयुक्त है...."

23. जैसा कि हम समझते हैं, विधायिका ने आदेश XXVII नियम 8क में "सरकार" शब्द का उपयोग किया है और आदेश XXVII नियम 8ख में इसे परिभाषित किया है। आशय बिल्कुल साफ और स्पष्ट है। विशिष्टता में इसका अर्थ है "सरकार"। अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील की यह दलील कि अपीलकर्ता एक जल संस्थान है, यह सरकार के विस्तारित शाखा के अंतर्गत आएगा, स्वीकार्य योग्य नहीं है।

24. हमारे पास ऐसा निष्कर्ष निकालने के कारण हैं। पंजाब राज्य और अन्य बनाम राजा राम और अन्य,[9] में दो-न्यायाधीशों की पीठ, रमना

दयाराम शेट्टी बनाम भारतीय अंतर्राष्ट्रीय हवाईअड्डा प्राधिकरण और अन्य [10] के एक अंश का हवाला देते हुए बताती है कि क्या बात एक निगम को केंद्र सरकार की एक एजेंसी या साधन बनाता है, इस प्रकार राय दी गई:-

> "हालाँकि, यह निष्कर्ष भी कि निगम केंद्र सरकार की एक एजेंसी या साधन है, इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि निगम एक सरकारी विभाग है।"

25. पशुपति नाथ सुकुल बनाम नेम चंद्र जैन और अन्य [11] में, एक सवाल उठा कि क्या राज्य विधान सभा का सचिव राज्यसभा में एक सीट भरने के लिए किसी चुनाव में रिटर्निंग ऑफिसर के रूप में नियुक्त होने के लिए योग्य है या नहीं। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला था कि विधान सभा के सचिव न तो सरकार के अधिकारी थे और न ही स्थानीय प्राधिकारी के, इसलिए उन्हें लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 की धारा 21 के तहत रिटर्निंग ऑफिसर के रूप में नियुक्त नहीं किया जा सकता था। उक्त मुद्दे से निपटते हुए, तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने विश्लेषण किया कि क्या धारा 21 में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "सरकार" का अर्थ संकीर्ण अर्थ में "कार्यकारी सरकार" होगा या एक उदार अर्थ रखा जाना चाहिए। न्यायालय ने साधारण खण्ड अधिनियम, 1897 की धारा 3(23) का उल्लेख किया जो "सरकार" को "सरकार" या "विशिष्ट सरकार" के रूप में परिभाषित करती है जिसमें केंद्र सरकार और किसी भी राज्य की सरकार

दोनों को सम्मिलित किया गया है। इसके बाद, न्यायालय ने कुछ संवैधानिक प्रावधानों, अर्थात् अनुच्छेद 12, 102(1)(a), 191(1)(a), 98, 187, 146, 229, 148(5), 311 और 318 का उल्लेख किया और प्रद्यात कुमार बोसेव बनाम माननीय मुख्य न्यायाधीश, कलकत्ता उच्च न्यायालय [12] में निर्णय लिया और स्थानीय सरकार की अवधारणा के बारे में बताया, जैसा कि संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची की प्रविष्टि 5 के संदर्भ में समझा गया है, अंतर्राष्ट्रीय में राज्य की अवधारणा कानून और उसके बाद संविधान के संघीय निर्माण की अवधारणा और संविधान के तहत शासन की अवधारणा और अंततः, यह राय दी गई:-

> "कानूनी दृष्टिकोण से, सरकार को लोक कार्यों का प्रयोग करने वाले कुछ निजी व्यक्तियों या निगमों के साथ मिलकर लोक प्राधिकरण या अधिकारियों द्वारा कुछ शक्तियों के प्रयोग और कुछ कर्तव्यों के निर्वहन के रूप में वर्णित किया जा सकता है। सरकार की मशीनरी की संरचना और इस संरचना के विभिन्न भागों से संबंधित शक्तियों और कर्तव्यों का विनियमन कानून द्वारा परिभाषित किया गया है जो कुछ हद तक उस तरीके को भी निर्धारित करता है जिसमें इन शक्तियों का प्रयोग किया जाना है या इन कर्तव्यों का निर्वहन किया जाना है। (देखें हेल्सबरी के इंग्लैंड के नियम, चौथा संस्करण, खण्ड 8, पैरा 804)। सरकार आम तौर पर

तीन सम्पदाओं का बोध कराती है, अर्थात् विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका, जबकि यह सच है कि संकीर्ण अर्थ में इसका उपयोग केवल कार्यपालिका को दर्शाने के लिए किया जाता है। इसलिए, उस अभिव्यक्ति को दिया जाने वाला अर्थ उस संदर्भ पर निर्भर करता है जिसमें उसका उपयोग किया गया है।"

इसके बाद न्यायालय ने इस प्रकार आगे अभिनिर्धारित किया:

"हमारा विचार है कि संविधान के अनुच्छेद 102(1)(a) और अनुच्छेद 191(1)(a) में 'सरकार' शब्द और अधिनियम की धारा 21 में "सरकार का एक अधिकारी" अभिव्यक्ति में 'सरकार' शब्द की उदारतापूर्वक व्याख्या की जानी चाहिए ताकि इसके दायरे में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका को सम्मिलित किया जा सके। उच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा 21 में आने वाले 'सरकार' शब्द को केवल कार्यकारी सरकार के बराबर मानने में गलती की और यह भी कहा कि राज्य विधानमंडल के अधिकारियों को उस धारा के प्रयोजनों के लिए सरकार के अधिकारियों के रूप में नहीं माना जा सकता है।"

[जोर दिया गया]

26. आर.एस. नायक बनाम ए.आर. अंतुले [13] में, न्यायालय इस बात से निपट रहा था कि भारतीय दण्ड संहिता के संदर्भ में "सरकार" शब्द का वास्तव में क्या अर्थ है। इस मुद्दे का जवाब देते हुए संविधान पीठ ने इस प्रकार कहा :-

> "समस्या का एक लघु और एक दीर्घ उत्तर है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 17 में प्रावधान है कि "'सरकार' शब्द केंद्र सरकार या किसी राज्य की सरकार को दर्शाता है"। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 7 में प्रावधान है कि "संहिता के किसी भी भाग में व्याख्या की गई प्रत्येक अभिव्यक्ति, स्पष्टीकरण के अनुरूप संहिता के प्रत्येक भाग में उपयोग की जाती है"। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि आधुनिक क़ानून के विपरीत धारा 7 "जब तक कि संदर्भ अन्यथा इंगित न करे" एक वाक्यांश प्रदान नहीं करता है जो एक आधुनिक क़ानून के शब्दकोश खण्ड की प्रस्तावना करता है। इसलिए, धारा 21(12)(a) में अभिव्यक्ति "सरकार" का अर्थ या तो केंद्र सरकार या किसी राज्य की सरकार होना चाहिए।"

इतना कहने के बाद वृहद पीठ ने कई निर्णयो को संदर्भित किया और इस प्रकार नियमित किया :-

"56. इस प्रकार हमारे संविधान में कार्यकारी, विधायी और न्यायिक जैसे कार्यों का व्यापक विभाजन है। विधायिका व्यापक नीति निर्धारित करती है और उसके पास खजाने की शक्ति होती है। कार्यपालिका नीति को क्रियान्वित करती है और विधानमंडल द्वारा स्वीकृत राशि राज्य की संचित निधि से खर्च करती है। विधान सभा ने अपने सदस्यों को वेतन और भत्ते का भुगतान करने में सक्षम बनाने के लिए अधिनियम बनाया और सदस्य अनुदान पर मतदान करते हैं और स्वयं भुगतान करते हैं। इस पृष्ठभूमि में, भले ही इस भुगतान को वितरित करने के लिए कोई अधिकारी हो या वेतन बिल तैयार किया जाना हो, ऐसे कारक इस मामले में निर्णायक नहीं हैं। यह केवल भुगतान का एक तरीका है, लेकिन विधायकों ने एक वोट से प्रासंगिक कानून के तहत उन्हें देय वेतन और भत्ते के वितरण के लिए निर्धारित निधि को बरकरार रखा है। इसलिए, भले ही विधायक को वेतन और भत्ते मिलते हैं, लेकिन वह राज्य सरकार के वेतन में नहीं है क्योंकि किसी राज्य के विधानमंडल को "राज्य सरकार" अभिव्यक्ति में नहीं समझा जा सकता है।

57. यह संविधान के अनुच्छेद 12 में निहित प्रावधान से और भी स्पष्ट हो जाता है जो यह प्रदान करता है कि "भाग

III के प्रयोजनों के लिए, जब तक कि संदर्भ की अन्यथा आवश्यकता न हो, "राज्य" में भारत सरकार और संसद और प्रत्येक राज्य की सरकार और विधानमंडल और भारत के क्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के तहत सभी स्थानीय या अन्य प्राधिकरण सम्मिलित हैं। अभिव्यक्ति "सरकार और विधानमंडल", दो अलग-अलग संस्थाओं को "राज्य" अभिव्यक्ति में सम्मिलित करने की मांग की गई है, जिसका अर्थ होगा कि अन्यथा वे विशिष्ट और अलग संस्थाएं हैं। यह निष्कर्ष इस तथ्य से और भी पुष्ट होता है कि कार्यपालिका अपना स्वयं का सचिवालय स्थापित करती है, जबकि अनुच्छेद 187 अध्यक्ष के नियंत्रण में विधानमंडल के एक सचिवीय कर्मचारी का प्रावधान करता है, जिसकी सेवा की शर्तें और नियम विधानमंडल द्वारा निर्धारित किए जाएंगे, न कि कार्यपालिका द्वारा। जब इन सभी पहलुओं को एक साथ जोड़ा जाता है, तो धारा 21(12)(a) में अभिव्यक्ति "सरकार" स्पष्ट रूप से कार्यपालिका को दर्शाती है, विधायिका को नहीं।"

[रेखांकन हमारा है]

27. हमने उपरोक्त निर्णयो का उल्लेख इस बात पर प्रकाश डालने के लिए किया है कि कुछ संदर्भों में "सरकार" शब्द को उदारतापूर्वक समझने की आवश्यकता हो सकती है और कुछ परिस्थितियों में इसे एक संकीर्ण दृष्टिकोण में समझा जाना चाहिए। अनुच्छेद 12 के तहत प्रयुक्त "राज्य" की अवधारणा "कार्यकारी सरकार" के अर्थ से काफी भिन्न है। वास्तव में यह निर्धारित करने के लिए कि कोई निकाय सरकार का साधन या एजेंसी है या नहीं, इस न्यायालय ने सामान्य सिद्धांत निर्धारित किए हैं लेकिन कोई विस्तृत परीक्षण निर्दिष्ट नहीं किया गया है। जैसा कि चंदर मोहन खन्ना बनाम राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद और अन्य,[14] में कहा गया है, निकायें जो सरकार के साधन या एजेंसी हैं और जो नहीं हैं, का सही विभाजन करने के लिए सामान्य सिद्धांतों में भी कोई सीधा और स्पष्ट नियम नहीं है। उस मामले में न्यायालय ने यह राय दी है कि जहाँ राज्य से वित्तीय सहायता इतनी है कि संस्थान की लगभग पूरे खर्च को पूरा किया जा सके, या निगम की पूंजीगत पूंजी पूरी तरह से सरकार द्वारा रखी गई है, तो यह कुछ संकेत देगा कि निकायों में सरकारी प्रकृति है। यदि संस्था या निगम को एकाधिकार का दर्जा प्राप्त है जो राज्य द्वारा प्रदत्त या राज्य द्वारा संरक्षित है। गहरे और व्यापक राज्य नियंत्रण के अस्तित्व का संकेत मिल सकता है। इसमें यह निर्धारित किया गया है कि यदि संस्था के कार्य सार्वजनिक महत्व के हैं और सरकारी कार्यों से संबंधित हैं, तो यह भी एक प्रासंगिक कारक होगा और ये केवल सांकेतिक संकेत हैं और किसी

भी मामले में निष्कर्षक या निर्णायक नहीं हैं। कई निर्णयों का उल्लेख करने के बाद, इसमें यह राय दी गई है कि अर्थ के व्यापक विस्तार को एक बुद्धिमान सीमा द्वारा नियंत्रित किया जाना चाहिए, क्योंकि राज्य का नियंत्रण संविधान के अनुच्छेद 12 के तहत ऐसे निकायों को "राज्य" के रूप में प्रस्तुत नहीं करता है। हालाँकि, राज्य का नियंत्रण विशाल और व्यापक है, यह निर्धारक नहीं है; राज्य द्वारा वित्तीय योगदान भी निर्णायक नहीं है। यदि सरकार महत्वपूर्ण सार्वजनिक महत्व के सरकारी कार्यों को अंजाम देते हुए कॉर्पोरेट पर्दे के पीछे काम करती है, तो निकाय को "राज्य" के रूप में पहचानने में थोड़ी कठिनाई हो सकती है।

28. इस स्तर पर, हम रमना दयाराम शेट्टी (उपरोल्लेखित) में तीन-न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय का संदर्भ उपयोगी रूप से उल्लेखित कर सकते हैं, जिसमें भगवती, जे. (जैसा कि तब उनका आधिपत्य था) ने राय दी थी कि जहां एक निगम सरकार का एक साधन या एजेंसी है, यह अपनी शक्ति या विवेक के प्रयोग में, सरकार के समान संवैधानिक या लोक कानून की सीमाओं के अधीन होगा। सरकार द्वारा मनमानी कार्यवाही को रोकने वाला नियम समान रूप से लागू होना चाहिए जहां ऐसा निगम जनता के साथ व्यवहार कर रहा है, चाहे नौकरी देने के माध्यम से या अनुबंध में प्रवेश करके या अन्यथा, और यह मनमाने ढंग से कार्य नहीं कर सकता है और अपनी इच्छानुसार किसी भी व्यक्ति के साथ संबंध में प्रवेश नहीं कर सकता है। लेकिन इसकी कार्यवाही कुछ सिद्धांतों के अनुरूप

होनी चाहिए जो तर्क और प्रासंगिकता की कसौटी पर खरी उतरती हो, यह नियम भी अनुच्छेद 14 में सन्निहित समानता के सिद्धांत से सीधे प्रवाहित होता है।

29. हमारे द्वारा उपरोक्त निर्णयो का संदर्भ केवल इस उद्देश्य के लिए है कि राज्य के किसी प्राधिकारी या साधन या राज्य की एजेंसी को निष्पक्ष, गैर-मनमाने ढंग से और उचित तरीके से कार्य करना है और वास्तव में, संविधान के अध्याय III द्वारा नियंत्रित किया जाता है लेकिन यह सभी उद्देश्यों के लिए "सरकार" के चरित्र को नहीं मानता है। जैसा कि हम आदेश XXVII नियम 8क और 8ख में प्रयुक्त भाषा से पाते हैं, इसका अर्थ केवल "सरकार" है। वास्तव में, नियम 8ख में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "केंद्र सरकार द्वारा या उसके खिलाफ या सरकार की सेवा में किसी लोक अधिकारी के खिलाफ किसी भी मुकदमे के संबंध में" और राज्य सरकार के लिए भी इसी तरह की भाषा का उपयोग किया जाता है। इसलिए, विधायिका ने जानबूझकर एक प्रतिबंधात्मक परिभाषा का उपयोग किया है और इसका दायरा व्याख्यात्मक प्रक्रिया द्वारा राज्य की किसी एजेंसी या साधन को सम्मिलित करने के लिए विस्तारित नहीं किया जा सकता है।

30. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने, जैसा कि पहले कहा गया, ने हमें केरल के उच्च न्यायालय के कुरुविला (उपरोल्लेखित) निर्णय का

संज्ञान दिलाया है, जहां खण्ड पीठ ने कलेक्टर, कटक बनाम पद्मा चरण मोहंती [15] के निर्णय पर विश्वास करके मूल रूप से आदेश XXVII नियम 8क की प्राप्ति और आदेश XLI नियम 5 के तहत स्थगन की अनुमति देने पर विचार किया है, जब राज्य अपीलकर्ता है। हम उक्त निर्णयों की सत्यता पर कोई राय व्यक्त करने का इरादा नहीं रखते हैं क्योंकि वर्तमान मामले में विवाद उत्पन्न नहीं होता है क्योंकि न तो केंद्र सरकार और न ही राज्य सरकार उस अर्थ में हमारे समक्ष अपील कर रही है। जिसने अपील की है यह "जल संस्थान" है, जो राज्य की एक विस्तारित शाखा या एजेंसी होने का दावा करता है। हमने स्पष्ट रूप से तय किया है कि आदेश XXVII नियम 8क और 8ख केवल सरकार पर लागू होते हैं, न कि राज्य की संस्था या एजेंसी पर। यह विधायिका द्वारा प्रयुक्त विशिष्ट और निश्चित भाषा है और उस उद्देश्य के लिए हमने अनुच्छेद 12 के तहत "राज्य" की अवधारणा और आदेश XXVII नियम 8क और 8ख में प्रयुक्त "सरकार" के बीच अंतर किया है।

31. आक्षेपित आदेश की कानूनी वैधता पर आते हुए हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय ने धन जमा करने और उसका 50% बिना प्रतिभूति जमा किए निकालने और शेष आधा प्रतिभूति जमा करने के बाद निकालने का निर्देश दिया है। उच्च न्यायालय ने ऐसी वापसी की अनुमति देने के लिए कोई उचित कारण नहीं बताया है। हमारे समक्ष मांगे गए आधारों के गुणावगुण पर टिप्पणी किए बिना (जिसका हमने विस्तार से उल्लेख,

आवश्यक नहीं होने से, नहीं किया है) हम केवल इस आदेश को संशोधित करते हैं कि अपीलकर्ता संबंधित जिला न्यायाधीश की संतुष्टि के लिए पूरी राशि के लिए प्रतिभूति छह सप्ताह की अवधि के भीतर प्रदान करेगा। चूंकि अपील का दायरा बहुत सीमित है, इसलिए हम उच्च न्यायालय से अनुरोध करते है कि वें जून, 2014 के अंत तक अपील का निस्तारण करे।

32. परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश में उपरोक्त संशोधनों के साथ, लागत के संबंध में किसी भी आदेश के बिना अपील का निस्तारण किया जाता है।

आर.पी.

अपील निस्तारित।

टिप्पणी सूची:

1. ए.आई.आर. 2004 केरला 233.
2. (2005) 4 एस.सी.सी. 1.
3. (2006) 13 एस.सी.सी. 322.
4. ए.आई.आर. 2007 एस.सी. 465.
5. (1998) 8 एस.सी.सी. 676.
6. (2005) 4 एस.सी.सी. 1.
8. (1970) 3 एस.सी.सी. 82.
9. (1981) 2 एस.सी.सी. 66.
10. (1979) 3 एस.सी.सी. 489.
11. (1984) 2 एस.सी.सी. 404.
12. (1955) 2 एस.सी.आर. 1331.
13. (1984) 2 एस.सी.सी. 183.
14. (1991) 4 एस.सी.सी. 578.

7. ए.आई.आर. 1987 एस.सी.15. 50 1980 सी.एल.टी. 191 1454.

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी ज्योति पटेल (आर.जे.एस.) UID: RJ00954 द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।